Reg No 177/2008-2009 ISSN: 2322–0317

PSSH PERSPECTIVE of SOCIAL SCIENCES and HUMANITIES

An International Multidisciplinary Refereed Research Journal

VOL 2, NO 2

JULY - DECEMBER 201

Biannual

Editor

Dr Hemant Kumar Singh

Assistant Professor

Economics Department

Madan Mohan Malviya PG College

Deoria (UP)

Publisher

Herambh Welfare Society

Varanasi (India)

बलचनमा में सामाजिक यथार्थ

मनोज कुमार[1]

सन् 1952 ई. में प्रकाशित नागार्जुन के इस बहुचर्चित उपन्यास में मिथिला के दरभंगा जिले के ग्रामीण अंचल का एक निम्नवर्गीय किसान–पुत्र बलचनमा अपनी यातनामय जीवन की कहानी आत्मकथात्मक शैली में कहता है। 'बलचनमा' एक ऐसा उपन्यास है जिसमें ईमानदार साधन विहीन तथा कठिन परिश्रम करने वाले किसानों की जीवन गाथा है, जो गोदान के होरी की भाँति टूटकर बिखरता नहीं अपितु अपने असफलताओं से किस प्रकार वह जूझता है और कभी भी निराश नहीं होता, संघर्षों के परिणामस्वरूप उसे नया जीवन मिलता रहता है। यद्यपि यह उपन्यास वर्ग संघर्ष पर आधारित है। जिसमें नागार्जुन समाजवादी यथार्थ के समर्थक होने के कारण शोषित उपेक्षित दलित और कमजोर वर्ग के पक्षधर हैं।

बलचनमा में हौसला है, संगठन बनाने की समझ उसमें है, मानसिक जागरूकता है, वह किसान और मजदूर दोनों रूपों में हमारे सामने आता है। और अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर वह सुराजी नेताओं के रहन–सहन, खानपान, व्यवहार, वर्ताव आदि पर प्रकाश डालता है। जमींदारों के शोषण अत्याचार, अमानवीयता, दुराचार आदि का सफल चित्रण करना लेखक का उद्देश्य रहा है। 'बलचनमा' की तरह भारतीय कृषक की प्रगतिशील, परिश्रमी, साहसी और अन्याय के आगे सिर न झुकाने वाला, चरित्रवान एवं सरल कृषक बनने की प्रेरणा देना, लेखक का मुख्य उद्देश्य है।

नागार्जुन का 'बलचनमा' सदियों से आती हुई समस्याओं को ही उद्घाटित करता है। शोषक और शोषित की समस्या, गाँव में जमींदार के कभी न खत्म होने वाले जुल्म के आगे किस तरह मजबूर और छोटे किसान दबे रहते है इसका चित्र 'बलचनमा' में स्वयं बलचनमा प्रस्तुत करता है..... ''उसके पिता ने आम का एक फल मालिक के बगीचे से तोड़ लिया जिसके परिणाम में मालिक के दरवाजे पर मेरे बाप को खमेली के सहारे बांध दिया गया। जांघ, चूतर, पीठ और बांह सभी पर बांस की हरी केला के निशान उभर आये। चोट के कहीं–कहीं खाल उचड़ गयी है और आंखों से बहते आसुओं की रेखायें गाल और छाती पर से सुखते नीचे चले गये है..... चेहरा काला पड़ गया है, होठ सूख रहे है।''[2]

बधुआ मजदूर ललुआ की निर्मम पिटाई, सामन्ती नृशंसता, क्रूरता एवं

[1] शोध छात्र (हिन्दी), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

[2]. बलचनमा : नागार्जुन, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2007, पृ0 5

अत्याचारों की ओर संकेत करती है, स्वयं बलचनमा भी शोषण की चक्की में पीसने के लिए ही पैदा हुआ है। वह मालिकों का जूठन खाकर ही बड़ा होता है। इस प्रकार से वह शोषण प्रक्रिया पर तीक्ष्ण व्यंग्य करते हुए कहता है..... ''भूख से मारे दादी और माँ आम की गुठलियों का गुदा चूर–चूर कर फांकती है यह भी भगवान ठीक करते है और मालिक लोग कनकजार और तुलसी फूल के खूश्बूतर भात, अरहर की दाल, परवल की तरकारी, घी, दही, चटनी खाते है, सो भी भगवान की लीला हैं।''[1] दादी विकट गालियों को प्रेमभाव से सुनती थी और मां पाव आध पाव चावल की कनी के लिये रिडियाती थी। इस उत्पीड़न से यदि उसके अंतःकरण में प्रतिक्रिया का क्रोधजन्म लेता है तो वह वास्तविक है क्योंकि उसे ज्ञात हो गया है कि हलकी नोक की तरह चुभने वाली उसकी गरीबी के जन्मदाता दुर्दैव नहीं है वरन् वे बाबू भैया लोग है जिनकी कथनी और करनी में जमीन और आसमान का अन्तर है। वे कहते कुछ और करते कुछ और हैं जो गरीबों को तिरस्कार और दुत्कार देते हैं और बाट बदलकर मेहनत की कमाई का धन भी हड़प लेते हैं। उसने उनकी नीचताओं को बड़े ही करीब से भोगा है तभी तो उसकी वाणी विषमता को स्वरूप देने के लिये खुल पड़ती है।

''हे भगवान इनका पेट है कि अगम कुआं। इतना धन, इतनी सम्पदा फिर भी सन्तोष नहीं।''[2] इस उपन्यास का नायक बलचनमा है जो जी तोड़ मेहनत और परिश्रम करता है लेकिन फिर भी उसे दो जून की रोटी नसीब नहीं है उसके यहाँ प्रतिदिन महुआ का आटा गूंथा जाता है और मालिक के ननिहाल वालों के आने पर शानदार दावत का आयोजन होता है। जिसकी जूठन बटोरकर वे सब एकत्र हो स्वाद की एकरूपता से उभरने का उपक्रम करते हैं। इसमें लेखक मात्र भोजन की विविधता और अंचल सापेक्षता को ही व्यक्त नहीं करता जीने की विवशता को भी स्वर दे डालता है।

जिस दिन मेहमान आते उस दिन मेरी दादी कितनी बेचैनी से उनकी जूठन की बाट जोहती। उनके खा लेने पर जूठन बटोकर दादी ले आती। मैं भी बुलाया जाता। हम सभी उस जूठन को घेरकर बैठते। सबको अपना–अपना हिस्सा मिलता। खाते समय दादी बतलाती जातीं यह कटहल का बड़ा है यह सहजन का अचार, यह रोहू की पेटी और देखो खट्मिट्ठी कैसी अच्छी है ? यह मझले मालिक के ननिहाल से आई थी। अरे वाह कनकजीर चावल का भात कितना गमक रहा है। दाल से घी की खुशबू आती है लेकिन मालकिन का हाथ छोटा है। खुलकर जब परोसती ही नहीं तो बेचारा–मेहमान क्या खायेगा और क्या छोड़ेगा।[3]

इस प्रकार की विषमता को भगवान की लीला कहकर पेट पालने वाले बूढ़े पंडित को बलचनमा के रोम–रोम से नमकहरामी टपकती नजर आती है क्योंकि वह इस पूँजीपति व्यवस्था का अंग बनने को स्वीकार नहीं करता है वरन् उसके खिलाफ विद्रोह करके अपनी आवाज को बुलन्द करने की कोशिश करता है। क्योंकि गरीबों की सबसे बड़ी कमजोरी उनका पेट है जो अधिक

---

[1]. वही, पृ0 79
[2]. वही, पृ0 24
[3]. वही, पृ0 20

परिश्रम करने के कारण जल्दी ही खाली हो जाता है। भूख लगना और अधिक परिश्रम करना उनकी नियति है। आज समाज के सामने जो नक्सल समस्या है यह उसका जीता जागता एक उदाहरण है। नक्सल समस्या क्या है यदि इस तथ्य का विश्लेषण किया जाए कि नक्सल समस्या का जन्म कैसे हुआ इसके पीछे कारण यह है कि जिस प्रकार संसाधनों पर प्रभुत्व वर्ग का आधिपत्य रहा है और आज भी कायम है जिसके परिणामस्वरूप गरीब और असहाय की जमीन जबरदस्ती ले ली जाती है और गरीब भूमिहीन होकर इधर–उधर मारे–मारे फिरता है। इसके बाद वह मजदूरी के लिए मजबूर होकर पूँजीपति अथवा प्रभुत्व वर्ग के पास उसे जाना पड़ता है इसके बाद परिश्रम के अनुकूल उसे मजदूरी नहीं मिलती और इसके बदले वह शोषण और अमानवीयता का शिकार हो जाता है और तरह–तरह की यातनामय जिन्दगी से त्रस्त होकर हथियार उठाने को वह मजबूर हो जाता है क्योंकि उनको सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक हर दृष्टिकोण से उपेक्षित किया जाता है। बलचनमा जैसा व्यक्ति ही इन समस्याओं से ग्रस्त होकर हथियार उठाता है और नक्सली बनने को मजबूर हो जाता है। आज नक्सली क्यों मरने और मारने पर उतारू है क्योंकि उनको बहुत ही अमानवीयता पाशविकता और शोषण के दौर से गुजरना पड़ा है। एक सभ्य समाज में हर व्यक्ति इज्जत और सम्मान की जिन्दगी जीना चाहता है लेकिन जब वह मजबूर हो जाता है तो वह हर पहलु पर विचार करने लगता है और परिणाम की चिन्ता नहीं करता जिसके परिणामस्वरूप देश और समाज में काफी अव्यवस्था का माहौल पैदा हो जाता है।

यद्यपि 'बलचनमा' उपन्यास में निम्न वर्ग और उच्चवर्ग दोनों का वर्णन है। उच्च वर्ग भूमिहार और ब्राह्मण हैं। निम्न वर्ग में चमार, पासी, खटिक, धानुक और डोम है। यहाँ पर स्पष्ट रूप से लेखक की सहानुभूति निम्न वर्ग के साथ है। निम्न वर्ग वालों की हड्डी–हड्डी पर उच्च वर्ग वाले अपना मौरूसी हक समझते हैं। गाली और जूता खाना जैसा की उनका प्रतिदिन का काम है। इन्हीं में से बलचनमा भी है जो अपने छोटे मालिक के यहाँ भैंस चराता है। दो किसुन भोग आम तोड़ने के अपराध में उसने अपने पिता को ठाकुर साहब के हाथ से मार खाते और मरते देखा था। और बची खुची भूमि को हड़पते भी देखा और इस प्रकार से उसका क्रान्तिकारी स्वभाव जाग उठा।

जूठों पर पलने वाला बलचनमा मलिकाइन के भतीजा फूल बाबू के साथ पटना जाता है, वहीं पर उसे बाहरी दुनिया का परिचय मिलता है। नमक कानून भंग करने के आरोप में फूल बाबू के जेल चले जाने पर बलचनमा घर लौट आता है। ठाकुर उसकी बहन रेवनी का बलात्कार करता है और बलचनमा को चोरी के एक मामले में फंसाना चाहता है, लेकिन बलचनमा इस शिकायत को लेकर लहेरिया सराय आश्रम में फूल बाबू के पास पहुँचता है। फूल बाबू उसका साथ देने में असमर्थता प्रकट करते हैं। इसके बाद बलचनमा आश्रम के संचालक राधा बाबू के यहाँ वह वालेंटियर

के रूप में कार्य करता है और कुछ दिन रहने के बाद उनसे पचास रूपये लेकर घर लौट आता है। इसके बाद वह अपना गौना करता है और बहन रेवनी की विदाई करता है। इस बीच भंयकर बाढ़ आने से उसकी सहायतार्थ फूल बाबू जैसे समाजवादी नेता आते हैं और खूब रूपया कमाते हैं। यहीं से बलचनमा का विश्वास उन नेताओं से उठ जाता है। सोसलिस्ट नेता राधा बाबू को बेदखली से बचाने के लिये उसने किसान आन्दोलन में भाग लिया। इसके फलस्वरूप जमींदारों द्वारा बलचनमा को बुरी तरह पीटा गया। इस तरह बचपन से लेकर अन्त तक संघर्ष की चक्की में पिसते–पिसते उसकी प्रतिहिंसा की भावना ने उसे क्रांतिकारी बना दिया। इस प्रकार बलचनमा भीरू नहीं जागरूक और विद्रोही प्रवृत्ति का है जो इस प्रकार की व्यवस्था का डटकर मुकाबला करता हैं। वह जानता है ''धरती किसकी जोते बोए उसकी किसान की आजादी आसमान से उतर कर नहीं आएगी, वह परगट होगी नीचे जूती धरती के भुरभुरे ढेलो को फोड़कर[1] परिस्थितियों के अनुसार बलचनमा का यह रूप परिवर्तन आंचलिक वातावरण की उपज हैं। इस प्रकार से बलचनमा अपनी हाड़ फोड़ मेहनत से अपना सम्मान बना लेता है। उसे जो राजनीतिक दृष्टि प्राप्त होती है, वह जाने वाली बिल्कुल नहीं है उसका विकास होता है। भूकम्प के सहायता कोष का अपनों में वितरण होता हुआ देखकर वह एक नारे से जुड़ जाता है। कमाने वाला खायेगा इसके लिये चाहे जो भी कुछ हो। इसके लिये वह आधे खेत मजदूरों और आधे किसानों के संघर्ष में सक्रिय रूप से सम्मिलित हो जाता है किन्तु इस वर्ग युद्ध में उसे साथियों के साथ पूँजीपति व्यवस्था के षडयंत्र का शिकार भी होना पड़ता है।

बलचनमा की यह आत्मकथा पात्रों की भीड़ लगाकर भी उसके महत्त्व को कम नहीं कर पाती है। वह महपुरा की धरती पर अपना खून गिराकर रक्त क्रान्ति का संकेत देता है जिसके लक्षण बंगाल और बिहार में पल्लवित हो रहे हैं। सरकार भूमिहीनों के शोषण को बहुत पहले ही समझ लिया था तभी तो उसके कायक्रमों में उसका समावेश हो गया था किन्तु आश्वासनों के बोझ से ऊबी जनता को धीमे चलना अब रास नहीं आ रहा है। इसी कारण वह क्रांन्ति परिवर्तनों का आश्रय ले रही है और उसके विलम्ब का राजनीतिक दल लाभ उठा रहे हैं। जो गरीब भूमिहीन और असहाय लोगों की भावना पर अपने स्वार्थ की रोटिया सेकते रहते हैं और भूमिहीन गरीब शोषित लोग उनके आश्वासनों की बाट जोहते रहते हैं। इस प्रकार अपने देश और समाज में नष्ट होती हुई मानवता को जब बलचनमा अपनी आंखों से देखता है और मरी हुई मानवता को महसूस करता है, तब वह प्रश्न करता है कि क्या अब भी मानवता पर गर्व करना उचित है ? नागार्जुन, प्रेमचन्द जी से यही भिन्न हो जाते हैं। प्रेमचन्द में जहाँ समाधान के लिए छटपटाहट है, वहीं नागार्जुन में विद्रोह का सशक्त स्वर सर्वत्र गूंजता हुआ सुनाई देता है। अतः नागार्जुन का बलचनमा गोबर का ही विकसित रूप है। नागार्जुन ने 'बलचनमा' उपन्यास द्वारा प्रेमचन्द परम्परा को पुनः स्थापित किया है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

---

[1]. वही, पृ0 200, 1952